वानप्रस्थ जीवन शैली

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

मानव जीवन को कालक्रमानुसार चार आश्रमों में विभाजित किया गया है– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास। वानप्रस्थ जीवन का तीसरा आश्रम है। इस आश्रम में मानव घर में रहते हुए भी घर से दूर रहता है। यह आश्रम संन्यास आश्रम की तैयारी है। मानव के ऊपर चार प्रकार के ऋण होते हैं– देवऋण, पितृऋण, गुरुऋण और समाजऋण। इनको उतारना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है। देवऋण को उतारने के लिए ईश्वर की पूजा अर्चना और सान्निध्य आवश्यक है। माता–पिता की सेवा करके पितृऋण उतारा जाता है। गुरु की सेवा करके गुरुऋण को उतारा जाता है। समाज मानव को एक पहचान देता है। अतः समाज में परोपकार के कार्य को करके समाजऋण से मुक्त हुआ जा सकता है। चारों वर्ण समाजरूपी भवन के चार स्तम्भ हैं। समाज का गौरव चारों वर्णों की श्री वृद्धि पर निर्भर करता है। वैदिक मन्त्रों में प्रार्थना की गयी है– ब्राह्मण विद्वान् तेजस्वी और सच्चरित्र हों। क्षत्रिय, शूद्र, धनुर्धर महारथी और विजयी हों। पशुधन हृष्ट–पुष्ट हो। गायें अधिक दूध दें, बैल बोझ वहन करने में समर्थ हों। घोड़े तीव्रगामी हों। स्त्रियां समर्थ हों और परिवार का भार उठा सकें। युवक वर्ग शिष्ट, सभ्य और वीर हों। वे जिस दिशा में चलेंगे राष्ट्र भी उधर ही चलेगा। कृषि की उन्नति के लिए ठीक समय पर वर्षात हो। इस प्रकार राष्ट्र में विकास और योग–क्षेम होवे। समाज में सुखद जीवन बिताने के लिये आवश्यक है कि कोई किसी से द्वेष न करे। समाज का कोई भी वर्ग हो, उच्च या निम्न, सभी से प्रेम का व्यवहार करना अभीष्ट है। वेदिक मन्त्रों में सत्य, अहिंसा, परोपकार, दान, दुर्गुण त्याग, सन्मार्ग, सत्संगति, पुरुषार्थ, सद्गुण, सत्कर्म, द्युतनिन्दा, पवित्रता, शान्ति, प्रसन्नचित्तता, जागरूकता, ऋषिधर्म, और गृहस्थ धर्म से सम्बन्धित आचरणीय अनुष्ठानों का वर्णन है। आचार शिक्षा के साथ ही साथ धार्मिक यज्ञादि कर्म, देवताओं का वर्णन, नीति शिक्षा, राजनीति शिक्षा, चातुर्वर्ण्य संस्कार, आश्रम, व्यवस्था, राष्ट्रीय कर्त्तव्य, संयम, तप, ज्ञान व्रत आदि का वर्णन है जो आचार शास्त्रीय दृष्टिकोण से मूल्यवान् है। इस लक्ष्य को आधार मानकर प्राचीन ऋषियों ने आश्रम व्यवस्था का विधान किया। इस व्यवस्था का उद्देश्य

था––जीवन को आयु के अनुसार चार भागों में बांटकर मानव जीवन को लक्ष्य की ओर अग्रसर करना। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में जीवन का विभाजन किया गया था। ब्रह्मचर्य और उसका पालन करने वाले ब्रह्मचारी के महत्त्व का विशदतापूर्ण वर्णन किया गया है। जीवन के प्रारम्भिक 25 वर्षों में छात्र, गुरु के समीप जाकर विद्याध्ययनपूर्वक इस आश्रम में रहता था। ऋग्वेद के मन्त्र में कहा गया है कि ब्रह्मचारी नगरों में प्रचार करता हुआ विचरण करता है और ब्रह्मचारी देवताओं का एक अंश होता है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है––संयमी जीवन व्यतीत करना। अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखना संयम है। ब्रह्मचर्य नींव के समान है। संयम की जितनी अधिक मात्रा बाल्यकाल में होगी उतनी ही पौष्टिकता भावी जीवन में प्राप्त होगी। कन्या का भविष्य निर्माता पति है। संयम की आवश्यकता कन्या और वर दोनों के लिये है। जिस प्रकार सभी जीव वायु के सहारे जीवित रहते हैं, उसी प्रकार शेष तीनों आश्रमी गृहस्थ आश्रम पर ही निर्भर रहते हैं। गृहस्थ ज्ञान और अन्न के द्वारा रक्षा करता है। इस कारण गृहस्थाश्रमी ही सर्व श्रेष्ठ है। विवाह संस्कार के साथ गृहस्थ आश्रम प्रारम्भ होता है। वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में आध्यात्मिक उन्नति के लिये प्रवृत्ति होती थी। जब गृहस्थाश्रमी पके हुए बाल तथा अपने पुत्र के पुत्र को देख ले तब वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करे। सर्वदा वेदाभ्यास में लगा रहे, ठंडा–गर्म, सुख–दुःख, मान–अपमान आदि द्वन्द्वों को सहन करे, सबसे मैत्री भाव रखे, दानशील बने, दान न ले और सब जीवों पर दया करे। मुनि वायु भक्षक होते हैं और पीतवर्ण के वस्त्र पहनते हैं। मुनि सभी देवों के मित्र और सत्कर्म करने वाले होते हैं। देवत्व को प्राप्त मुनि वायु का मित्र और वायुवत् गतिशील होता है। वानप्रस्थ और संन्यास दोनों आश्रमों में ब्रह्मचर्य का पूर्ण–पालन करना होता है। दोनों आश्रमों में अन्तर यही है कि वानप्रस्थ आश्रम में पुरुष स्त्री के साथ भी रह सकता है, पर संन्यासाश्रम में नहीं। वानप्रस्थ में अग्नि प्रज्वलित रखनी पड़ती है, पर संन्यासी अग्नि आदि का त्याग कर देता है। संन्यासी को इन्द्रियों पर संयम रखना और परमतत्त्व का ध्यान करना होता है। आश्रम व्यवस्था का स्वरूप क्या था? यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित नहीं होता, किन्तु ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति आदि शब्द का प्रयोग वेदों में आया है। यह सम्भव अवश्य है कि व्यवस्थित रूप से उस समय आश्रम व्यवस्था प्रारम्भ न हुयी हो। उसके पश्चात् उसमें व्यवस्थित रूपता आयी

हो। वानप्रस्थ जीवन में सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की कामना करनी चाहिए। वेद भारतीय संस्कृति के मूलमन्त्र हैं। वैयक्तिक उत्थान और सामाजिक उत्थान के लिये वेदों में कर्त्तव्य निर्देश किया गया है। इसी से आस्तिकता, सच्चरित्रता, मानसिक प्रसन्नता और आत्मिक सुख की अनुभूति होती है। सदाचरण के अभाव में समाज में अनाचार, पाप भावना, हिंसा, अत्याचार और अनैतिकता का वातावरण तैयार होता है, परमात्मा को सर्वव्यापक मानते हुये सदा शुभ कर्म करो। अपने पुरुषार्थ से प्राप्त धन का ही उपयोग करो। दूसरे के धन की ओर लोभदृष्टि से न देखो। जीवन में त्याग की भावना जागृत करो। इससे ही जीवन सुखमय होगा। वानप्रस्थ आश्रम में सांसारिक मोह, माया त्यागकर संन्यास की तैयारी की जाती है।